भारतीय लघु चित्रकला की शैली

चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव का इतिहास। कला मानव की आत्मा की वह क्रिया है जिसमें मन तथा शरीर दोनों की अनुभूति निहित है। 'चित्रसूत्र' के अनुसार चित्रकला सभी कलाओं से श्रेष्ठ है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के 'चित्रसूत्र' में इस प्रकार कहा गया है :-

कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।

मङ्गल्यं प्रथमं चैतद्गृहेयत्र प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात् कला के द्वारा धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष की प्राति होती है, जिस घर में इसकी प्रतिष्ठा की जाती है, वहाँ पहले ही मंगल होता है।

यथा सुमेरूः प्रवरो नगानां

यथाण्डजानां गरूणः प्रधानः।

यथा नराणां प्रवरः क्षितीशः

स्तथा कलानामिह चित्रकल्पः।।

अर्थात् जिस प्रकार पहाड़ों में सुमेरू श्रेष्ठ है, पक्षियों में गरूण प्रधान है, नरों में राजा उत्तम है, उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है।

मनुष्य ने प्रत्येक काल में अपने विकास के प्रयत्नों से अपने कार्यकलापों में निपुणता एवं कुशलता, अग्रसरता तथा विस्तीर्णता की परम् सीमाओं को प्राप्त करने की चेष्टा की है जिससे उसकी सभ्यता का निरन्तर विकास हुआ है। कलाकार की प्रविधियों तथा क्रियात्मक रूपों का समाज में शनैः-शनैंः प्रचलन होता जाता है।

एक व्यक्ति दूसरे की कला देखकर कलाकार की रचना विधियों को ग्रहण करता जाता है। इस प्रक्रिया को परम्परा कहते हैं। प्रत्येक देश की इसी प्रकार एक कला-परम्परा बन जाती है। जब दो देशों की शैलियों का मिश्रण होता है तो एक नई शैली का जन्म होता है।

विश्व की चित्रकला में भारतीय चित्रकला अपना निजी व महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारतीय चित्रकला रेखा प्रधान है। चित्र की आकृतियाँ प्रकृति एवं वातावरण सबको निश्चित सीमा रेखाओं में अंकित किया गया है। अजन्ता की

जगतप्रसिद्ध भित्तिचित्र इस कला की अमर धरोहर है। बौद्ध, जैन, पाल, गुजरात, अपभ्रंश, राजस्थानी, मुगल एवं पहाड़ी चित्रशैलियों ने भारतीय चित्रकला के गौरव को ईसा पूर्व दूसरी शती से आज तक सुरक्षित रखा है।

अजन्ता गुफा :-

भारतीय लघुचित्रकला का आरम्भ अजन्ता गुफा की चित्रकला से माना जाता है। अजन्ता गुफा महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित है। इस गुफा में कुल 30 गुफायें हैं जो पूर्व से पश्चिम तक 600 गज की लम्बाई में बनाई गई हैं। अजन्ता की प्रत्येक गुफा में मूर्तियाँ, स्तम्भ तथा द्वार काटकर भित्तियों पर चित्रकारी की गई है। ये गुफायें वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला का उत्तम संगम हैं। ग्रिफिथ्स महोदय के अनुसार अजन्ता तथा अन्य गुफाओं में भित्ति चित्रण की परम्परा टेम्परा तथा फ्रेस्को विधि का सम्मिश्रण है। भित्ति चित्रण की कला भारत में अजन्ता से प्रारम्भ हुई और आज तक मकानों, मन्दिरों, भवनों आदि के अलंकरण में प्रयोग की जाती है।

अजन्ता की भित्तिचित्रण तकनीकी :-

अजन्ता के चित्रों का धरातल तैयार करने के लिए सर्वप्रथम पलस्तर की पर्त में चूना, खड़िया (छत पर गोबर), बारीक बजरी का गारा या मसाला बनाकर गुफा की खुरदुरी दीवार पर लगा दिया जाता था। इस गारे को कई दिनों तक अलसी के पानी में भिगोकर फूलने दिया जाता था, इसमें उरद की दाल का पानी भी डाला जाता था। कभी-कभी विशेष रूप से छत के गारे में धान की भूसी भी मिलाई जाती थी। पलस्तर की पहली तह पौन इंच से लेकर एक इंच तक मोटी होती थी। इसके ऊपर अण्डे के छिलके की मोटाई के बराबर सफेद पलस्तर का लेप चढ़ा दिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक गुफा पलस्तर से ओपी जाती थी और चित्रित की जाती थी।

भित्ति चित्रण में गिने-चुने खनिज रंगों का ही प्रयोग किया जाता थाए ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से अपने अस्तित्व को न खो बैठे। अजन्ता में जिन रंगों का प्रयोग किया गया है उनमें सफेद, लाल, पीले, भूरे, हरे और नीले रंग का प्रयोग किया जाता था। सफेद रंग प्रायः अपारदर्शी है और चूने या खड़िया से बनाया गया है। लाल (हिरौंजी तथा गेरूआ) तथा भूरे रंग लोहे के खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय पत्थर से बनाया गया है जो ताँबे का खनिज रंग है जिसे टेरावर्त (रंगसब्ज) कहते हैं। अजन्ता के परवर्ती चित्रों में लेपिस-लाजुली रंग (नीला रंग) का प्रयोग हुआ है। यह रंग एक बहुमूल्य खनिज पत्थर से बनाया जाता था और इस रंग को फारस तथा बदख्शां से आयात किया जाता था। शेष रंग स्थानीय हैं। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी में लाल तथा पीले रंग का अत्याधिक प्रयोग किया गया है। पीले रंग को

रामरज या संखिया की भस्म से बनाया गया है। रंगों को चावल के माँड़ तथा वज्रलेप (सरेस) में मिलाया जाता था। कहीं-कहीं गुलाबीए बैंगनी और काले रंग का प्रयोग भी किया गया है।

अजन्ता गुफा के चित्रों का विषय :

आलंकारिक आलेखनों को छोड़कर अजन्ता के अधिकांश चित्रों का विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। इन चित्रों में बुद्ध के विभिन्न चित्र और पवित्र धर्म चिन्ह बनाये गये हैंए साथ ही बुद्ध की जन्म-जन्मान्तर की जीवन कथायें तथा जातक कथायें इन गुफाओं की चित्रकारी का प्रधान विषय हैं। जातक कथाओं के अन्तर्गत बुद्ध के अनेकों पूर्व जन्मों की कथायें हैं जिनका चित्रकार ने सुन्दरता से अंकन किया है। गुफायें दो प्रकार की हैं पहली चैत्य गुफायें और दूसरी विहार गुफायें।

जिस प्रकार भारत बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध की जन्मभूमि हैए उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि भारत बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रकला का भी उद्गम स्थल है। अजन्ता की भव्य चित्रकारी में इस कला शैली की उन्नति तथा विकास की क्रमिक प्रगति स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन चित्रावलियों में आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की कला दिखाई पड़ती है। श्रीलंका में सिघिरिया की गुफाओं में भी इस कला शैली का परिपक्व रूप दिखाई पड़ता है। भारत में बाघए बादामी तथा सित्तनवासल के चित्रों में भी अजन्ता के ही रेखा चातुर्य का प्रभाव है। यद्यपि इन गुफाओं के चित्रों की तकनीकी आदि कुछ बातों में अजन्ता से अधिक समानता नहीं दिखाई पड़ती है। कदाचित् स्थानान्तरण, भिन्न प्रकार का संरक्षण, जलवायु तथा वातावरण की भिन्नता के कारण प्रविधि की यह असमानता दिखाई पड़ती है। चित्र गुफा की दीवारों और छतों पर भी बनाये गये हैं।

मुगलकाल की चित्रकला :-

ईरानी फारसी मुगलकाल का आदिस्रोत या जन्मस्थान समरकन्द और हिरात था। 15वीं शताब्दी में तैमूर वंश के संरक्षण में फारस की कला उत्कर्ष को प्राप्त हुई। इस वंश के शासकों ने चित्रकला को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और एक दरबारी चित्रकला का विकास हुआ। 'बिहजाद' ईरानी शैली का अपने समय का सबसे उत्तम चित्रकार था। इसी कारण बिहजाद को पूर्व का रैफेल' कहकर पुकारा गया है। इस ईरानी या हिरात शैली का बिहजाद तथा उसके शिष्यों ने विकास किया। यह शैली भारत में बाबर तथा हुमायूँ के काल में पहुँची। बाबर तथा हुमायूँ के काल में जो ईरानी शैली अपने मूल या अपरिवर्तित रूप में प्रचलित थी अकबर के शासनकाल में उस शैली से एक नवीन कला शैली का जन्म हुआ जिसे 'मुगल कला' कहते हैं।

अकबर ने 'दीनइलाही' धर्म चलाकर अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया। अकबर के दरबार में अधिकतर चित्रकार हिन्दू ही थे। जहाँगीर के काल को चित्रकला का स्वर्णयुग कहा जाता हैए क्योंकि जहाँगीर के समय में सर्वाधिक चित्रों का निर्माण किया गया। चित्रों में पक्षी, पुष्प, वृक्ष, लतायें, पशु, युद्ध के दृश्य, आखेट के दृश्य, शबीह, दरबार के दृश्य आदि का निर्माण सर्वाधिक और सुन्दर ढंग से किया गया। जहाँगीर स्वयं भी कला का पारखी था। चित्रकला के जिस संस्थान का बीजारोपण अकबर ने किया था वास्तव में वह जहाँगीर (1605-1627 ईस्वी राज्यकाल) के समय में पूर्ण रूप से फली-फूली और उसका विकास हुआ। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा तुजुके जहाँगीरी' लिखी है जो एक उच्चकोटि की स्मृतिकथा है। जहाँगीर के पश्चात् शाहजहाँ सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ के राज्यकाल में चित्रकला उपेक्षित सी रह गई। शाहजहाँ की रूचि भवन निर्माण में अधिक थी इसलिए उस समय भवनों का निर्माण सर्वाधिक हुआ और चित्रकला का पतन आरम्भ हो गया। औरंगजेब ने कला और कलाकारों के वातावरण को ही समाप्त कर दिया। औरंगजेब चित्रकला का कट्टर विरोधी था फिर भी उसके युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था के चित्र मिलते हैं। इस प्रकार चित्रकला के जिस वृक्ष का बीजारोपण अकबर ने किया था और सम्राट जहाँगीर ने जिसको सींचाए उसको औरंगजेब ने समूल नष्ट कर दिया।

कला सामग्री :-

कला सामग्री की व्यवस्था के प्रति मुगल सम्राटों की सजगता अबुलफज़ल द्वारा आईन-ए-अकबरी में लिखा है :-

चित्रकारों द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली कला सामग्रियों की उपलब्धि में काफी वृद्धि की गई तथा इन वस्तुओं की समुचित कीमतें पूर्ण परख के बाद निर्धारित की गई।' '

मुगल चित्रकारों में जिस वर्ण-विधि का प्रयोग किया गया है उसको टैम्परा कहते हैं। सामान्य रूप से मुगल चित्र कागज पर बने हैंए परन्तु प्रारम्भ के कुछ चित्र झिल्ली (अमससनउ) तथा कुछ कपड़े पर अंकित हैं। 'हम्ज़ानामा' चित्रों की रचना सूती कपड़े पर की गई है। सन के पौधों के रेशों से बने कागज जिसको बहुधा 'रेशमी' से सन्दर्भित किया गया हैए वास्तव में 'हरीरी' कागज है जिसका सीमित रूप में प्रयोग किया गया है। मुगल चित्रशाला में प्रारम्भ में चित्रण कार्य के लिये कागज पर्शिया से आयात किया जाता था। निःसन्देह सियालकोट निर्मित कागज जिसे सियालकोटी' के नाम से जाना जाता थाए उसके उपलब्ध होते हुए भी पर्शिया से निर्मित कागज ईरानी' तथा इस्फाहानी' ही मुगल चित्रकारों

द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। बहुधा कागज की कमी होने की स्थिति में इसके छोटे-छोटे टुकड़ों को सावधानीपूर्वक जोड़कर चित्रण कार्य के लिए बड़ी माप में कागज को तैयार किया जाता था। कागज की पट्टियों का प्रयोग अधिकतर हाशिया आलेखन के लिए किया जाता था तथा मुख्य चित्र को समूचे कागज के टुकड़े पर ही निरूपित किया जाता था। इसके अतिरिक्त बांसी' तथा तुलत' नाम के कागज का प्रयोग भी किया गया। दक्षिण भारत में दौलताबाद कागज उत्पादन का मुख्य केन्द्र था।

जहाँगीर के काल तक कागज के उत्पादन में काफी विस्तार हो चुका था तथा मुगलकाल में स्यालकोट, दानपुर, मथुरा, कश्मीर, काल्पी, अहमदाबाद, दौलताबाद, जुन्नार आदि कागज उत्पादन के मुख्य केन्द्र थे। काल्पी में निर्मित कागज सबसे उत्तम श्रेणी का था जिसे 'महाजाल' के नाम से जाना जाता था।

चित्रण कार्य के लिए उपयुक्त कागज को चिकना एवं समतल करने के लिए गोलाकार चिकने पत्थर से रगड़ा जाता था। इस प्रक्रिया के पश्चात् कागज की चिकनी सतह पर कोयले की लेखनी से रेखाचित्र बनाया जाता था। रेखा चित्रण का कार्य गेरू रंग से भी किया जाता था। इस प्रारम्भिक रेखाचित्र में सुधार के पश्चात् निश्चित एवं सही रेखाओं को काले रंग में अंकित कर निरूपण के विषय को शुद्ध रूप में रंगों के प्रयोग के लिए तैयार किया जाता था। रेखांकन में काले रंग का प्रयोग फारसी एवं मुगल शैली में विशेष है। इन शैलियों में इस रंग का प्रयोग न केवल खाका चित्र के लिए किया गया है अपितु चित्र के विभिन्न भागों में प्रयोग किये जाने वाले रंगों कें नामों का अंकन भी इसी रंग में किया गया है। यह काला रंग स्याही में गांद मिलाकर तैयार किया जाता था जोकि कड़ुवा तेल के दीपक के जलने से उपलब्ध काजल या कालिख पदार्थ है। मुगल चित्रों में चित्रित काली रेखायें इसी स्याही में हैं। मुगल कलाकारों द्वारा वृक्षों बबूल, नीम आदि से प्राप्त गोंद तथा सरेस को माध्यम के रूप में प्रयोग किया गया है। यह प्रक्रिया रंगों को स्थायित्व प्रदान करने के साथ-साथ उनको कागज अथवा कपड़े पर चिपकाने (स्थिर रखने) में भी सहायक है।

सूक्ष्म चित्रों को बनाने के लिए गिलहरी की पूँछ के बालों से बनी तूलिका का प्रयोग किया जाता था। बकरीए नेवले आदि के बालों से बनी तूलिकाओं का प्रयोग सामान्य कार्य के लिए किया जाता था।

तैयार रेखाचित्र पर कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व पूरे धरातल पर सफेद रंग का पतला आलेप किया जाता था। यह आलेप इतना पतला और पारदर्शी होता था क

काले रंग में अंकित रेखायें धुँधले रूप में दृष्टिगोचर रहती थीं। यही रेखायें आकारों में रंग के प्रयोग में सहायक होती थीं।

कलाकारों द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला सफेद रंग सफेदा' zinc white) काशगर से आयात किया जाता था। सफेदा' की जानकारी 18वीं शताब्दी में हुई। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में चित्रण कार्य के लिए सफेदा के स्थान पर सफेद सीसा' (white lead) का प्रयोग किया जाता था।

लाल रंग के लिए गेरूए हिरौंजीए सिन्दूर मुख्य हैं। इन रंगों को ऐसी मिट्टी तथा पत्थरों से प्राप्त किया जाता था जिनमें लौह का ऑक्सीकारक तत्व बहुतायत में प्राप्त हो। उत्तम श्रेणी का ईंगुर (सिंदूर) पर्शिया से आयात किया जाता था।

नीले रंग द्रव्यों में नील तथा लाजवर्दी मुख्य हैं। लाजवर्दी रंग पदार्थ लाजवद' (लेपिस लाजुली) नाम के पत्थर से प्राप्त किया जाता था। यह पत्थर भारतवर्ष में नहीं पाया जाता है। इस रंग का प्रयोग अजन्ता के भित्ति चित्रों (गुफा नं0 2 रचनाकाल 60 ए.डी.) तथा दसवीं शताब्दी में बंगाल एवं नेपाल में प्रज्ञापारमिता' की पाण्डुलिपियों में, 12वीं से 16वीं शताब्दी में चित्रित कल्पसूत्र' एवं कालकाचार्य कथा' जैन पाण्डुलिपियों में सामान्यतः प्राप्त हैं।

पीला रंग प्योड़ी' के नाम से जाना जाता है। यह रंग बहुत ही दुर्लभ है। सामान्य रूप से पीला रंग रामरज' से प्राप्त किया जाता था।

'हरिताल' एवं नील के मिश्रण से हरा रंग 'जहरी' तैयार होता था। इसी प्रकार बैंगनी रंग नील एवं ईंगुर के मिश्रण से तैयार किया जाता था। भूरे रंग की विभिन्न श्रेणियां या ताने सफेदा एवं स्याही के मिश्रण से तैयार की जाती थी।

मुगल कलाकारों द्वारा चित्रों में चित्रण कार्य के लिये धातु रंग द्रव्यों का प्रयोग भी सामान्य रूप से किया गया है। मुगल चित्रों में स्वर्ण का प्रयोग बाहुल्य रूप से हुआ है। इसका प्रयोग आलंकारिक आकारों, आलेखनों तथा आकाश के निरूपण में बहुधा किया गया है। स्वर्ण रंग द्रव्य का मुगल चित्रों में प्रयोग वैभव एवं क्रान्ति का प्रतीक स्वरूप है।

प्राचीन भारतीय चित्रण कला में स्वर्ण का प्रयोग सम्भावित रूप से ज्ञात है। विष्णुधर्मात्तर पुराण (रचनाकाल : 450-650ई0) में स्वर्ण का रंजन सामग्री के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है। 14वीं-15वीं शताब्दी में चित्रित पाण्डुलिपियों में स्वर्ण का प्रयोग स्पष्ट रूप से परिलक्षित है, जो सम्भवतः फारसी चित्र शैली (तिमूरिद

स्कूल) के प्रभाव के परिणामस्वरूप है। मुगल चित्रकारों द्वारा स्वर्णपत्रों एवं स्वर्ण-चूर्ण दोनों का ही प्रयोग किया गया है।

'टेम्परा' चित्र पद्धति में बन्धकारी माध्यम का महत्व विशेष इस पद्धति में रंग को पहले माध्यम विशेष के साथ मिश्रित किया जाता है उसके पश्चात् तरल रूप में प्रयोग किया जाता है। नीम तथा बूबल के गोंद का माध्यम के रूप में प्रयोग सामान्य था। कार्य के लिए रंग को उपयुक्त बनाने हेतु रंगों को पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार पतला किया जाता था। रंग के प्रयोग के पश्चात् चित्रणकार्य समाप्त हो जाने पर चित्र को पलटकर उसके पिछले रूख को कड़े एवं चिकने गोमेद (gate) से रगड़ा जाता था। इस क्रिया के फलस्वरूप चित्र पूर्ण रूप से समतल एवं चमकदार हो जाता था।

चित्रों की अनुकृति तैयार करने के लिये मूल चित्र का चरबे पर खाका बनाया जाता था। 'चरबा' हिरन के खाल की झिल्ली से तैयार किया जाता था। यह अल्प पारदर्शी होने के कारण अक्स के लिए प्रयोग किए जाने वाले कागज की तरह उपयोग में लाई जाती थी।

राजस्थानी शैली :

राजस्थानी शैली 15वीं शताब्दी से आरम्भ होती प्रतीत होती है। 15वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुजरात शैली, जैन शैली, अपभ्रंश शैली आदि जो पश्चिमी भारतीय चित्रण शैली के नाम से विख्यात है, उसकी परम्परा में नया रंग, रूप और आकार लेकर राजस्थान प्रदेश में जो कला प्रस्फुटित हुईए उसे राजस्थानी चित्रकला ' के नाम से जाना जाता है। भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजस्थानी चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान एक विशाल मरूस्थली क्षेत्र है, जहाँ भौगोलिक स्थिति एवं स्थानीय वातावरण का कला पर विशेष प्रभाव पड़ा। चित्रकला की परम्परा काफी प्राचीन है। 8वीं शती पूर्व से ही राजस्थान में चित्रकला की अपनी निजी ठोस परम्परा थी। सरस्वती नदी के किनारे ऋग्वेद की रचना एवं सरस्वती घाटी सभ्यता का प्रसार राजस्थान की ही देन है। पोथी-चित्रण की दृष्टि से राजस्थान प्रदेश सर्वाधिक समृद्ध है। राजस्थानी चित्रकार नव पौराणिक हिन्दू धर्म को अभिव्यक्त करने के लिए कृष्णलीलाए रामलीलाए रागमालाए घरेलू जीवन व व्यक्ति सम्बन्धी चित्रों का निर्माण किया गया। आनन्द कुमार स्वामी ने राजस्थानी शैली को दो भागों में विभक्त किया है - राजस्थानी अर्थात् राजपूताने से सम्बन्धित तथा पहाड़ी चित्रकला। राजस्थानी चित्रकला का प्रसार बीकानेर से गुजरात की सीमा तक और जोधपुर से ग्वालियर और उज्जैन तक तथा इसके आमेर, ओरछा,

उदयपुर, बीकानेर, उज्जैन आदि कला केन्द्र रहे। राजस्थानी चित्रकला की जन्मभूमि राजस्थान ही है और उसका केन्द्र मेदपाट (मेवाड़) रहा है। राजस्थानी चित्रकला के नामांकित चार स्कूल हैं जिनमें अनेक शैलियाँ, उपशैलियाँ विकसित हुईं तथा एक-दूसरे से प्रभावित होते रहे - 1 मेवाड़ स्कूल, 2 मारवाड़ स्कूल, 3 हाड़ौती स्कूल तथा 4 ढूँढाड़ स्कूल। इनसे सम्बन्धित उपशैलियाँ निम्न प्रकार हैं :-

1- मेवाड़ स्कूल :- चावंड शैली, उदयपुर शैली, नाथद्वारा शैली, देवगढ़ शैली, सावर उपशैली, बनेड़ा, बागौर, बेगूँ, केलवा आदि ठिकाणों की कला।

2- मारवाड़ स्कूल :- जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, किशनगढ़ शैली, अजमेर शैली, नागौर शैली, शिरोही शैली, जैसलमेर शैली तथा घाणेराव, रियाँ, भिणाय, जूनियाँ आदि ठिकाणा कला।

3- हाड़ौती स्कूल :- बूँदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली।

4- ढूँढाड़ स्कूल :- आम्बेर शैली, जयपुर शैली, शेखावटी शैली, अलवर शैली, उणियारा उपशैली तथा झिलाय, ईसरदा, सामोद, शाहपुरा आदि ठिकाणा कला।

मेवाड़ की चित्रकला :-

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर' अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। यह नगरी मनोरम झीलों के लिए विख्यात है। इसके चारों ओर जंगल तथा पहाड़ियाँए भव्य राजप्रसाद भी हैं जो इसकी शोभा को और अधिक बढ़ा देते हैं। मेवाड़ के इतिहास में महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई०) का महत्वपूर्ण स्थान है। महाराणा कुम्भा एक संगीतज्ञए विद्वान और कला संरक्षक शासक था। मेवाड़ शैली के चित्रों का विषय प्रधानतः धार्मिक है। भागवत पुराण, रामायण, दरबारी जीवन तथा राग-रागनियों का चित्रण, नायिका भेद, सूरसागर, गीत गोविन्द आदि पर सुन्दर चित्रण कार्य किया गया है। मेवाड़ शैली की उत्कृष्ट कृति 'रागमाला चित्रावली' सबसे सुन्दर है।

चित्रों का रंग :-

मेवाड़ शैली में चटक रंगों का प्रयोग किया गया है। चित्रकारों ने प्रायः सुर्ख लाल, केसरिया, पीला, नीला (लेपिसलाजुली) तथा नील आदि रंगों का विशेष

प्रयोग किया गया है। चित्रकार अपने रंग प्रायः रासायनिक विधि से बनाता थाए इन रासायनिक रंगों में प्यौड़ी तथा सिंदूर विशेष विधियों से बनाए जाते थे। नील तथा महावर वानस्पतिक रंग हैं। गेरूआ, हिरौंजी तथा रामरज आदि खनिज रंग हैं। चित्रों में लाल तथा पीले रंग का प्रयोग अधिक किया गया है। आकृतियों के चेहरों में सुरा के समान लालिमायुक्त रंग का प्रयोग किया गया है। चित्रों की पृष्ठभूमि को सामान्यतया एक ही रंग या विरोधी रंगों के टुकड़ों में संयोजित किया गया है और इनके ऊपर चित्रों की घटनाओं को उनके महत्व के अनुसार संयोजित किया गया है। चित्र के प्रमुख व्यक्ति या महत्वपूर्ण घटना को चित्र के मुख्य भाग में रखा गया है। चित्रों के हाशियों को प्रायः लाल तथा पीली सादा पट्टियों से बनाया गया है।

बूँदी-कोटा की चित्रकला :-

बूँदी शैली कें चित्रों का विकास रागिनी चित्रों से होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस शैली का आरम्भिक उदाहरण 'राग दीपक' तथा रागिनी भैरवी' के चित्र से माना जाता है। इन चित्रों में मेवाड़ की परम्परागत शैली और मुगल शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन चित्रों का रंग सरल हैए परन्तु चटक रंगों के कारण चित्र प्रभावपूर्ण हैं। 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बूँदी शैली का पूर्ण विकास होता है और इस समय में अधिक चित्रों का निर्माण हुआ। चित्रकार ने कभी-कभी गहरी सपाट पृष्ठभूमि का प्रयोग किया हैए जिससे चित्र अधिक स्पष्ट और आकर्षक बन गया है। बूँदी शैली के चित्रों में सोने तथा चाँदी के रंगों का अधिक प्रयोग किया गया है। वैसे समान्यतः बूँदी शैली के चित्रों में पीले तथा लाल रंग को प्रमुखता दी गई है। चित्रकार के प्रमुख रंग - पीला (प्योड़ी), लाल (सिंदूर तथा संगरफ), हरा (जंगाल), सफेद (सफेदा), काला (काजल), नीला (नील तथा लाजवर्दी), गेरू, हिरौंजी तथा रामरज हैं।

बूँदी शैली में चित्रों के हाशिये स्वर्ण रेखा से सम्पन्न सिन्दूरी रंग में या पीले व हरे रंग में बने हैं। यहाँ चटकीले रंगों का प्रयोग दर्शनीय है। यहाँ सोने-चाँदी के रंगों के साथ-साथ नारंगी एवं हरे रंग का अधिक प्रयोग किया गया है।

कोटा चित्रों में चटक रंग के साथ ठण्डे रंगों का प्रयोग संतुलित रूप में किया गया है। सलेटी रंग को विशेष रूप से अंकित किया है। लाल, सुनहरी, हरा एवं श्वेत रंगों का प्रयोग अधिक हुआ है। जल के अंकन में चाँदी के रंग तथा काले रंग से सफेद पृष्ठभूमि पर लहरदार रेखायें दिखाई गई हैं। हाशिये लाल रंग से पतली पट्टी के रूप में चित्रित हैं जिसके दोनों तरफ काली पतली रेखा निर्मित हैं।

किशनगढ़ की चित्रकला :-

किशनगढ़ के शासक राठौरवंशी थे। किशनगढ़ शैली का संस्थापक नागरीदास था। किशनगढ़ शैली मारवाड़ शैली का उन्नत और परिष्कृत रूप है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में चटक रंग और आकारों की मौलिक उद्भावना है। चित्रों में अधिकांश अमिश्रित रंगों का प्रयोग है। प्रायः पीले और लाल रंग का उपयोग अधिक किया गया है परन्तु नीले रंग का प्रयोग अत्यधिक शान्तिपूर्ण और सुखद है। आवश्यकतानुसार रंगों में सफेद रंग के मिश्रण से विभिन्न प्रकार के कोमल रंग बनाये गये हैं। इन्हीं रंगों में से एक रंग गुलाबी है जो चित्रों में शरीर को रंगने के लिए किया जाता है। सोने के रंग का भी प्रयोग किया गया है।

किशनगढ़ शैली के चित्रों की रेखायें कोमलए बारीक और भावपूर्ण हैं। रेखाओं में प्रवाह तथा गति है। भौंह तथा बालों को बारीक-बारीक रेखाओं द्वारा बनाया गया है। बाद के चित्रों में काली रेखाओं का प्रयोग किया गया है।

जयपुर की चित्रकला :-

जयपुर राज्य राजस्थान के प्रमुख राज्यों में से एक था। जैन धर्म के कारण सचित्र विज्ञप्ति लेखों का भी राजस्थान की कला में पर्याप्त प्रचलन हो रहा था। चतुर्मास हेतु जैन धर्म गुरूओं को आमंत्रित करने के लिए स्थानीय जैन संघ की ओर से जो स्वागतार्थ पत्र भेजा जाता था उसे विज्ञप्ति लेख कहते हैं।

जयपुर शैली के चित्रों की खुलाई मुगल चित्रों के समान काले रंग या काली स्याही से की गई है। पीलेए लाल, नीले, सफेद तथा काले रंगों की चित्रों में प्रधानता है। जयपुर शैली के चित्रों में हरे रंग की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों के हाशिये रजतवर्णी, काली, हरी तथा लाल पट्टियों से बनाये गये हैं। जयपुर शैली में रेशमी कपड़े पर दीवार पर (भित्तिचित्र) तथा कागज पर चित्र (लघुचित्र) बनाये गये हैं। आभूषणों की चमकदार सज्जा के लिए मणिकुट्टिम तकनीकी का प्रयोग किया गया है। रंगों में समानता व सूफियानापन तथा सुवर्ण की दीप्तिमय आलेखन प्रशंसनीय हैं।

पहाड़ी चित्रकला :-

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पहाड़ी कला अपने झीने से आवरण में प्रस्फुटित होती नजर आती है। 17वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राजा कृपालपाल (सन् 1678-1763) के संरक्षण में जम्मू की पहाड़ियों में बसोहली शैली का विकास हुआ। 18वीं शताब्दी में बसोहली शैली खूब पनपीए जिसका प्रमाण हमें भागवतपुराण सम्बन्धी दो पूरी चित्रावलियों के रूप में मिलता है। अपने सम्पूर्ण रूप में पहाड़ी कला

का विकास 18वीं शताब्दी के उत्त्रार्द्ध (सन् 1750 ई० से आगे) में हुआ। 19वीं शताब्दी के मध्य में यह कला अपने नये आयाम स्थापित कर चुकी थी। सन् 1790 से 1805 तक के 15 वर्षीय काल में काँगड़ा कला अपने उच्चतम शिखर में पहुँची और सुन्दरतम् कलाकृतियों का सृजन हुआ। मैटकाफ़ सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 19वीं शताब्दी के आरम्भ में काँगड़ा में पहाड़ी चित्रकला की खोजबीन की।

'भागवतपुराण' सम्बबन्धी चित्रों की संख्या 120 है, जिनका औसतन आकार 12 ग 8 है। इन चित्रों का बाहरी किनारा लाल रंग के बिन्दुओं से अंकित है और भीतरी किनारा नीलेए काले रंग में रंगा हुआ है। रासपंचाध्यायी' सम्बन्धी चित्रों के किनारे गहरे नीले रंग में हैं और उन पर सुनहरी रंग में पुष्प अंकित हैं।

पहाड़ी कला ने काँगड़ा कला के नाम से ख्याति अर्जित की तथापि यह किसी हद तक विवादास्पद विषय रहा कि इस कला का मुख्य केन्द्र अथवा जन्मस्थान काँगड़ा था या गुलेर। बहुसम्मत बात यह है कि पहाड़ी कला का अभ्युदय गुलेर में ही हुआ। पहाड़ी कला के जो चित्र उपलब्ध हैं उनमें गुलेर कला निखरी हुई नजर आती है। सम्भवतः 1780 ई० के आस-पास जब गुलेर शैली अपने सर्वोच्च शिखर में नजर आती है इसने काँगड़ा में प्रवेश किया और इस प्रकार यह काँगड़ा कलम के नाम से अभिहित होकर प्रतिष्ठित हुई।

पहाड़ी चित्रकला के उपकरण और चित्र तैयार करने की विधि :-

कलाकारों ने चित्रों का निर्माण अधिक संख्या में किया ताकि वह महज राजाओं व अन्य धनी लोगों तक ही सीमित न रह जाए, अपितु उनका उपयोग जन-साधारण के लिए भी हो। चित्र धार्मिक होने के कारण उनको सुरक्षित रखा गया। चित्रों को सूक्ष्मए सुन्दर और कलापूर्ण बनाया गया है। एक ही चित्र की अनेक प्रतियाँ बनाई गई हैं, कुछ चित्रों में इतनी समानता है कि ध्यान से देखने पर ही दिखाई पड़ती है।

जब एक रेखांकन तैयार होता था तो वह ड्रॉइंग सुरक्षित रख ली जाती थी। यह मूल ड्रॉइंग हिरन की चमड़ी पर बनाई जाती थी। विविध चित्रों की ऐसी अनेक ड्रॉइंगें तैयार कर ली जाती थी जिन्हें बहुत सम्भाल कर रखा जाता था। कलाकार की यह सामग्री कई पीढ़ियों तक हस्तान्तरित होती जाती थी।

चित्रों के लिए जिस कागज का उपयोग होता था वह कुटीर उद्योग का उत्पादन था और सामान्यतः 'सियालकोटी कागज' के नाम से जाना जाता था। यह कागज चिकना और सफेद नहीं था बल्कि कुछ मटियाले रंग पर रहता था। इस

कागज पर तूलिका से हल्के लाल रंग में एक आरम्भिक रेखाचित्र बना लिया जाता था। इस कागज को किसी सफेद रंग से पोतकर और घुटाई करके चिकना बना लिया जाता था। उसके बाद भूरे अथवा काले रंग से रेखायें बना ली जाती थीं। इसके बाद पहले पृष्ठभूमि में रंग भरे जाते थे बाद में आकृतियों में। इसके बाद रेखाओं को पुनः तूलिका से गहराया जाता था। इस प्रकार चित्र तैयार होता था।

पहाड़ी चित्रकला में जो रंग प्रयुक्त हुये हैं उन्हें चितेरे स्वयं तैयार करते थे। अधिकांश रंग फूलोंए फलों और वनस्पपतियों से बनाए जाते थे। रंगों की इस विधि को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपनाया था। कपड़ों को छापने के रंग भी स्थानीय रूप से तैयार होते थे। आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल श्री लौकवुड किपलिंग ने सन् 1883 में लिखा था - यह विद्या काँगड़ा की असाधारण विशेषता है। यहाँ के छपे हुए कपड़ों में निश्चय ही दिल्ली से भी अधिक सफाई पाई जाती है।' '

पहाड़ी कलम के चित्रों में लालए पीलाए नीला और काला रंग समान रूप से लगाया गया है। रंगों का उजलापन आज भी देखते ही बनता है। दो-तीन सौ साल के लम्बे अन्तराल में भी इन रंगीन चित्रों की चमक-दमक सुरक्षित रही है। रंगों पर ध्यान देने से उनकी मूल प्रखरताए तेजस्विता और आभा का सहज आभास होता है।

कला-मर्मज्ञ जगदीश मित्तल ने चम्बा भित्तिचित्रों में प्रयुक्त हुए रंगों का वर्णन इस प्रकार दिया है :-

1- खनिज पदार्थों से बने रंग :- मुल्तानी मिट्टी, गेरू, हरमुंजी, लाजवर, संग्राफ, हड़ताल।
2- रासायनिक पदार्थों से बने रंग :- सिंदूर, काजल, सफेदा।
3- वनस्पति से बने रंग :- नील, महावर।

बसोहली कलम में मुख्य व प्राथमिक रंगों लाल, नीला और पीला का ही अधिकांशतः प्रयोग हुआ है। काँगड़ा व गुलेर कलम के चित्रों में इन रंगों के विभिन्न मिश्रण तथा आभा नजर आती है। बसोहली की पृष्ठभूमि का अंकन किसी एक रंग या अधिक रंग की एक ही घसीट में हुआ है। काँगड़ा अथवा गुलेर की पृष्ठभूमि में रंगों की विविधता है और साथ ही सूक्ष्मता भी।

पहाड़ी कला अपने लयात्मक रंगीन चित्रों में अपनी सूक्ष्मता के साथ बखूबी उभरी है। इस सूक्ष्मता को उभारने में कलाकार की तूलिका और उसके अभ्यस्त हाथ खूब सक्षम थे। ये कूचियाँ गिलहरी के पूँछ के बालों से बनती थी। चित्रों के बनाने में एक बाल के ब्रुश का भी उपयोग हुआ है। सूक्ष्मता में विस्तार देखने को मिलता है। इतनी सूक्ष्मता और नफासत उभर आई है कि उन्हें ठीक तरह से देखने के लिए मैग्नीफाइंग ग्लास की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है।

चित्र संग्रह

चित्र 2 : भैरवी रागिनी : उदयपुर शैली, सन् 1660
(कुमार संग्रामसिंह संग्रहालय, जयपुर)

चित्र 11 : गुलदस्ता लिये नायिका : बीकानेर शैली, सन् 1690
(कुमार संग्रामसिंह संग्रहालय, जयपुर)

चित्र 14 : हाथियों की लड़ाई : बूँदी शैली, 18वीं शती मध्य
(चित्रशाला, बूँदी का भित्ति-चित्र)

चित्र 15 : महाराजा रामसिंह (II) की शाही सवारी का जुलूस : कोटा शैली, 19वीं शती
(कुमार संग्रामसिंह संग्रहालय, जयपुर)

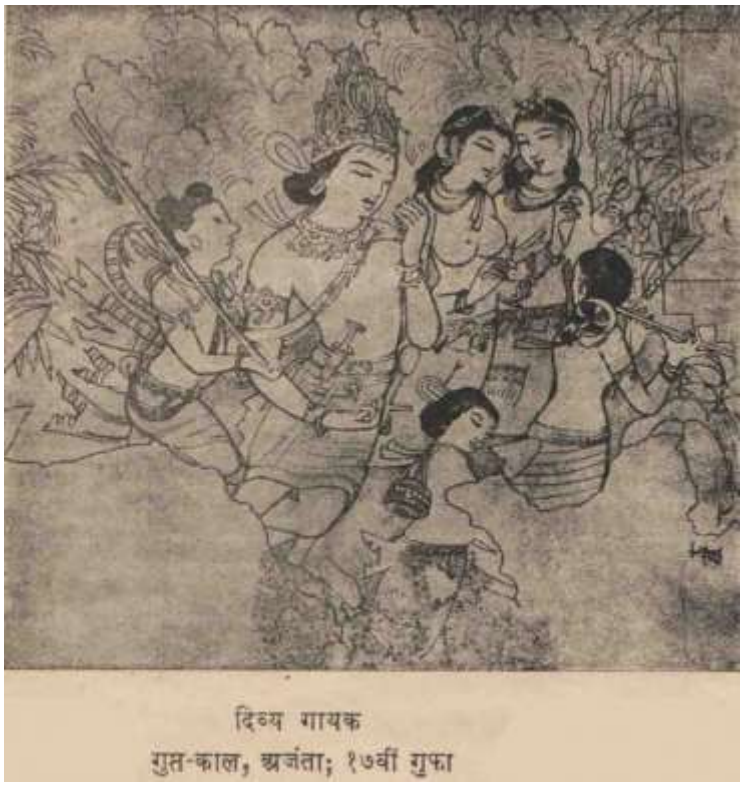

दिव्य गायक
गुप्त-काल, अजंता; १७वीं गुफा

कृष्ण और राधा का प्रेमाचरण — कांगड़ा

मस्त हाथी की दौड़

गुलेर दूतिका प्रेमिका को प्रेमी से मिलने के लिए ले जाती हुई

प्रज्ञा पारमिता का एक चित्रित पृष्ठ
१२वीं शती; पाल-शैली